

## बी० ए० पार्ट-1 हिन्दी साहित्य (प्रतिष्ठा)

डॉ० आशा कुमारी

अतिथि व्याख्याता

हिन्दी विभाग

मगध महिला कॉलेज, पटना

मोबाइल नम्बर-9304098602,7004661162

Email \_ [ashakumari2500@gmail.com](mailto:ashakumari2500@gmail.com).

### रासो की भाषा

'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी के उस युग की रचना है, जिस समय तक हिन्दी का कोई व्यवस्थित रूप नहीं बना था और संस्कृत तथा प्राकृत के साथ-साथ अपभ्रंश भाषाओं में प्रायः ग्रन्थ रचना होती थी। यद्यपि उस समय अपभ्रंश भाषा में जैन ग्रंथों की रचना अधिक मात्रा में होती थी, फिर भी सिद्ध एवं नाथ सन्तों के द्वारा एक ऐसी भाषा का भी निर्माण हो रहा था, जो उस काल की साहित्यिक भाषा अपभ्रंश से कुछ भिन्न सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा के अधिक निकट थी। उस भाषा पर प्रान्त-विशेष का प्रभाव था। इसलिए उस लोक-प्रचलित एवं सर्वसाधारण की भाषा का कोई व्यवस्थित रूप नहीं था। वह राजस्थान प्रदेश में राजस्थानी की विशेषताओं को, ब्रज प्रदेश में ब्रज की विशेषताओं को, अवध प्रान्त में अवधी की विशेषताओं को और मिथिला प्रदेश में मिथिला की विशेषताओं को लेकर पनप रही थी। यही कारण है कि उस काल की भाषा पर संस्कृत, प्राकृत एवं तत्कालीन लोक-भाषा की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है, परन्तु जब हम पृथ्वीराज रासों की भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं, तब ज्ञात होता है कि उसमें न केवल तत्कालीन भाषाओं की छाप विद्यमान है, बल्कि पन्द्रहवीं एवं सोलहवीं शताब्दी में विकसित ब्रजभाषा की भी स्पष्ट छाप दिखाई देती है। यह माना जा सकता है कि ग्याहरवीं शताब्दी तक मुसलमानों के आवागमन के साथ अरबी, फारसी के शब्दों का आदान-प्रदान आरम्भ हो गया था, परन्तु सोलहवीं शताब्दी में जाकर ब्रज का जो रूप सुस्थिर हुआ, रासों में उनकी छाया का मिलना रासों की भाषा के बारे में सन्देह उत्पन्न कर देता है फिर भी इतना तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि ब्रजभाषा का सोलहवीं शताब्दी वाला रूप रासों में सर्वत्र नहीं मिलता और उसे कुछ विद्वान प्रतिलिपिकारों की कृपा एवं कुछ विद्वान प्रक्षिप्त अंश मानकर संतोष कर लेते हैं। फिर भी रासो की भाषा में एकरूपता का न होना विद्वानों के मत-मतान्तर का विषय बन गया है। इसी कारण कुछ विद्वान यह अनुमान लगाते हैं कि रासों की रचना मूल रूप में अपभ्रंश के ही अन्दर हुई थी, कुछ इसे राजस्थानी (डिंगल) भाषा में रचा हुआ स्वीकार करते हैं, कुछ इसे ब्रजभाषा (पिंगल) में रचा हुआ मानते हैं और कुछ विद्वान इसे आदि युग की रचना होने के कारण विभिन्न भाषाओं के मिश्रित रूप में रचित स्वीकार करते हैं। इस तरह, रासों की भाषा की बारे में निम्नलिखित मत प्रचलित है:-

(1) अपभ्रंश भाषा—सम्बन्धी:— रासों को मूलतः अपभ्रंश भाषा में लिखने वाले सर्वप्रथम मुनि जिनविजय हैं। भारतीय भाषाविद् डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी हैं, जो रासों को प्राचीन ग्रंथ घोषित करते हुए उसकी भाषा अपभ्रंश ही स्वीकार करते हैं; क्योंकि रासों की भाषा आधुनिक भाषाओं के स्वरूप से सर्वथा भिन्न एवं प्राचीन है। इस वर्ग के पाँचवें विद्वान् डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी हैं, जो 'सन्देश रासक' के आधार पर यह अनुमान लगाते हैं कि रासों की भाषा पुरानी हिन्दी थीं और यह घोषणा करते हैं कि उस समय पुरानी हिन्दी अपभ्रंश भाषा के ही सर्वथा निकट थी। अतः रासों की भाषा को अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में रचा हुआ ही मानना चाहिए।

(2) राजस्थानी भाषा सम्बन्धी:—रासों की भाषा के सम्बन्ध में दूसरा वर्ग उन विद्वानों का मिलता है जो इसे राजस्थानी अथवा डिंगल की रचना बताते हैं, इनमें सर्वप्रथम डॉ० दशरथ शर्मा हैं, उन्होंने रासों की भाषा के बारे में पर्याप्त अनुसंधान किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि रासों एक ऐसी प्राचीन भाषा में लिखा गया जान पड़ता है जिसमें अपभ्रंश की बहुलता है। संभवतः रासोंकार अपभ्रंश परम्परा के कवियों में से अन्तिम कवि रहा होगा, परन्तु उसकी भाषा का अधिक झुकाव प्राचीन राजस्थानी की ही ओर है, जो डिंगल कहलाती है।

डॉ० रामकुमार वर्मा जी का मानना जिन्होंने आदिकाल का वर्गीकरण करके पृथ्वीराज रासों आदि सभी ग्रंथों को चारण—युग की डिंगल भाषा अथवा राजस्थानी भाषा के ग्रंथ घोषित किया है।

(3) पिंगल सम्बन्धी:—रासों की भाषा के सम्बन्ध में तीसरा वर्ग उन विद्वानों का है, जो इसे पिंगल की रचना मानते हैं, इस मत के मानने वालों में से एफ. एस. गाउन, जॉन बीम्स, डॉ० ग्रियर्सन, टेसीटरी, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० श्यामसुन्दर दास, मिश्रबन्धु, डॉ० नामवर सिंह, डॉ० माताप्रसाद गुप्त आदि प्रसिद्ध हैं। इन सभी विद्वानों का कथन है कि रासों की भाषा के गठन, स्वभाव, प्रकृति एवं स्वरूप का अध्ययन करने पर यही जान पड़ता है कि न वह अपभ्रंश है, न डिंगल या पुरानी पश्चिमी राजस्थानी है, न पुरानी ब्रजभाषा है, बल्कि यह पिंगल भाषा है, जिसे शौरसेनी अपभ्रंश से निकली हुई उस युग की काव्य—भाषा कह सकते हैं। यहाँ तक कि श्री मोतीलाल मेनारिया ने अपने डिंगल में 'वीररस' नामक ग्रंथ में डिंगल भाषा की जिन प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है, वे भी रासों की भाषा से मेल नहीं खाती और रासों में पिंगल भाषा की सी ललित एवं मधुर पदावली, क्रियाओं के रूपों एवं विभक्ति चिन्हों की ही बहुलता दृष्टिगोचर होती है।

(4) मिश्रित भाषा सम्बन्धी:— उपरोक्त तीनों वर्गों के अतिरिक्त कुछ विद्वानों की राय में रासों मिश्रित भाषाओं का ग्रंथ है। इस मत को मानने वालों में डॉ० विपिनबिहारी त्रिवेदी प्रमुख हैं, जिन्होंने रासों पर पर्याप्त शोधकार्य करने के उपरान्त 'चन्द्रवरदाई और उनका काव्य' नामक ग्रंथ लिखा है जिसमें रासों की भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण एवं शोधपूर्ण विवेचन करते हुए आपने बताया है कि "यद्यपि ऊपर कुछ नियम दिये गये हैं फिर भी रासों की भाषा में एक विलक्षणता यह दिखाई देती है कि किसी नियम का अक्षरशः पालन नहीं मिलता। अधिकांश शब्दों के स्वरों और व्यंजनों के रूप में परम स्वच्छन्दता और संभवतः छन्द की तात्कालिक आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन मिलते हैं तथा उनके संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, गुजराती, राजस्थानी और हिन्दी रूपों के दर्शन होते हैं।" इतना ही नहीं, आपने यह भी स्वीकार किया है कि "इसमें वैदिक संस्कृत, पालि, पैशाची, मागधी, अर्द्ध—मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अपभ्रंश, प्राचीन राजस्थानी, प्राचीन गुजराती, पंजाबी, ब्रज आदि भारतीय आर्य भाषाओं के अतिरिक्त अरबी, फारसी और तुर्की शब्दों की अनोखी खिचड़ी तैयार मिलती है तथा देशज शब्दों की भी एक संख्या है।" इस तरह आप रासों को मिश्रित भाषा का ग्रन्थ मानते हैं।

इस प्रकार, रासो की भाषा के अन्तर्बाह्य साक्ष्यों के आधार पर परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि रासो की भाषा पर्याप्त प्राचीन है, उसमें एकरूपता नहीं है तथा उसमें तत्सम्, तद्भव, अर्द्धतत्सम्, देशज एवं विदेशी सभी प्रकार के शब्दों की बहुलता है। इतना अवश्य है कि जहाँ उसमें युद्ध एवं वीरोत्साह सम्बन्धी वर्णन हैं, उनमें पुरुषवृत्ति की प्रधानता है, ओजस्विता हैं, महाप्राणत्व है, द्वित्व की प्रधानता है, समासिकता है, टकार-बहुलता है और वहाँ पर भाषा ओजस्विता के साथ हुंकार करती हुई अग्रसर हो रही है, परन्तु जहाँ पर प्रेम, विवाह एवं विलासपूर्ण श्रृंगार आदि के वर्णन आये हैं, वहाँ पर रासो की भाषा में कोमलता एवं मधुरता है, अनुस्वारान्त शब्दों की बहुलता है, वर्ण-मैत्री का प्राधान्य है, पंचम वर्णयुक्त अनुप्रासादि की प्रधानता है तथा वह मंद-मंथर गति से प्रवाहित हो रही है। उसके ऐसे विलक्षण रूप को देखकर यहीं कहना पड़ेगा कि रासो की भाषा अपभ्रंश काल के अन्तिम चरण में महाकवि चन्द द्वारा निर्मित हिन्दी के उस प्राचीन रूप को प्रस्तुत करती है, जिसकी मधुर, सरस एवं कोमल प्रवृत्ति को अपनाकर एक ओर सूरदास, नन्ददास, बिहारी, देव आदि ने ब्रजभाषा के रूप का गठन किया, तो दूसरी ओर जिसके टकार -बहुल एवं महाप्राण प्रधान रूप को अपनाकर भूषण, लालकवि, जोधराज, सूदन आदि ने अपने काव्यों का निर्माण किया। इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि रासो की भाषा में प्राचीन भाषाओं का पुट पर्याप्त मात्रा में मिलता है और कवि ने भी शब्दों को मनमाने ढंग से तोड़ा-मरोड़ा है, किन्तु वह तत्कालीन बोलचाल की भाषा के अधिक निकट जान पड़ती है और उसमें ऐसे क्रियापदों की ही प्रधानता है, जिनका प्रयोग भक्तिकाल एवं रीतिकाल तक हिन्दी में बराबर मिलता है। जैसे-तजि, भजि, गिरि, बढि, लहि, करिय, करि डारी आदि।

रासो की भाषा के बारे में यहीं मानना पड़ेगा कि अपभ्रंश काल के अन्तिम चरण में शौरसेनी अपभ्रंश से निकली हुई काव्य-भाषा हिन्दी के ही आरम्भिक रूप को प्रस्तुत करती है, जिसमें विविधता होकर भी धारावाहिकता है, पर्याप्त सम्मिश्रण होने पर भी भावानुकूलता है और विभिन्न भाषाओं का प्रभाव होने पर भी जिसमें कवि के संकेत पर चलने की अपूर्व क्षमता है।

निसंदेह रासो की भाषा हिन्दी के आदिकाल की उस भाषा की ओर संकेत कर रही है, जिस पर एक ओर तो संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि तत्कालीन साहित्यिक भाषाओं का प्रभाव था, किन्तु दूसरी ओर जो अपभ्रंश के साहित्यिक शिकंजे से निकल कर लोकभाषा के आधार पर अपना एक स्वतन्त्र रूप ग्रहण कर रही थी। इसीलिए रासो हिन्दी-साहित्य के साथ-साथ भाषा के भी गौरवपूर्ण प्राचीन रूप को प्रस्तुत करता है।